श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान

महाशिवरात्रि

ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

भगवान शिव को अपना नाम प्रिय है

महाशिवरात्रि के सत्संग के दौरान हमने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र की धुन गाई। हमने बारम्बार भगवान का नाम जपा। 'ॐ नमः शिवाय।' 'मैं भगवान शिव को नमन करता हूँ, जो मंगलमय हैं, जो सबकी आत्मा हैं और अन्तर-आत्मा भी हैं।'

गुरुमाई जी ने हमें समझाते हुए कहा कि भगवान को अपना नाम प्रिय है, कि जब हम उनका नाम लेकर उन्हें पुकारते हैं तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं। जब गुरुमाई जी ने ऐसा कहा तो तत्काल ही मुझे वे कहानियाँ याद आ गईं जो मैंने तब पढ़ी थीं जब मैं बड़ी हो रही थी। वे कहानियाँ प्राचीन भारत की वे महागाथाएँ थीं जो मूलतः पुराणों व अन्य शास्त्रों में लिपिबद्ध की गई हैं। बीते युगों के ऐसे लोगों के असंख्य वृत्तान्त मिलते हैं जो सुदूर पर्वत-शिखर पर जाकर कई महीनों व वर्षों तक लगातार तपस्या किया करते थे। तपस्या करते समय वे एकाग्रचित्त होकर अपने इष्टदेव का—प्रायः ही भगवान शिव का—नाम जपा करते थे। अन्ततः, भगवान उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, उनके समक्ष प्रकट हो जाते और उन्हें उनका मनोवांछित वर प्रदान करते।

मुझे ये कथाएँ पढ़ना बहुत अच्छा लगता था, परन्तु एक प्रश्न मेरे मन में घूमता रहता था। मुझे लगता था कि अधिकतर समय इन कथाओं के पात्र भगवान शिव से इसलिए प्रार्थना किया करते क्योंकि उन्हें भगवान से कुछ वर माँगना होता था। कभी-कभी उनके द्वारा माँगे गए वरदान श्रेष्ठ और पुण्यकारी हुआ करते थे जैसे, धर्म की रक्षा, मानवता का उत्थान। कभी-कभी वे किसी तत्कालिक या व्यक्तिगत लाभ को मन में रखकर तपस्या करते। और *कभी-कभी* तो प्रार्थना करने वाला व्यक्ति स्पष्ट तौर पर लोभ का प्रतीक ही हुआ करता जो इस बात पर तुला हुआ होता कि उसकी सत्ता-सम्पत्ति बढ़ती रहे, उसका प्रभुत्व बना रहे। असुरगण भी भगवान शिव का आशीर्वाद उतना ही पाना चाहते थे जितना की देवतागण और पृथ्वीलोक के मानव। यहाँ तक की राक्षसराज रावण जिसके अनैतिक कृत्यों की पृष्ठभूमि

पर अधिकांश रामायण घटित हुई, उसे भी भगवान शिव का अनन्य भक्त कहा जाता है। उसकी अदम्य शक्ति मुख्यतः भगवान शिव के प्रति की गई उसकी घोर तपस्या का फल थी।

इसलिए मैं सोचा करती, "ऐसा कैसे हो सकता है कि भगवान, जो सर्वज्ञ व पूर्णतया निर्लिप्त हैं, वे इन *सभी* लोगों को वह दे देते हैं जो ये माँगते हैं, चाहे वह व्यक्ति कोई भी हो, उसने कुछ भी किया हो, और उसका कोई भी उद्देश्य क्यों न हो? क्या ऐसा 'मात्र' इसलिए कि उसने भगवान के नाम का जप किया था?"

जो बात मैं ठीक से समझ नहीं पा रही थी, कम-से-कम बौद्धिक स्तर पर तो नहीं, वह थी भगवान की करुणा का स्वरूप। भगवान शिव दयालु हैं। वे भक्तवत्सल हैं। वे आशुतोष हैं यानी वे सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं और जो सच्चे मन से उनसे प्रार्थना करता है, उसकी प्रार्थना वे तुरन्त सुनते हैं। जब हम भगवान को पुकारते हैं, जब हम उनके नाम का उच्चारण करते हैं तब हमारे अवगुण गौण हो जाते हैं। भगवान हमसे मिलने *अवश्य आएँगे* । वे अन्तर-आत्मा हैं, हमारे अन्तर में विद्यमान ईश्वर हैं। अपने अन्तर में विद्यमान इस दिव्यता की अनुभूति करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम भूतकाल में किए अपने हरेक पाप का प्रायश्चित्त करें। भगवान के प्रेम के योग्य बनने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम अभी जो हैं उससे 'बेहतर' बनें। हमें बस उनका *स्मरण करना* है। भगवान हमेशा यहाँ हैं, वे *यहीं हैं,* हमारे साथ हैं, और वे हमें जाँचते-परखते नहीं।

मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। और न ही मैं यह कह रही हूँ कि हमें अपने जीवन में सत्कर्म करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, कि हमें दयालु, उदार व संवेदनशील बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, कि हमें अपने ग्रह व इसके निवासियों का ध्यान नहीं रखना चाहिए। गुरुमाई जी हमें सिखाती हैं कि मनुष्य होने के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम बिलकुल ऐसा ही करें। यहाँ तक की पौराणिक कथाओं में भी कुछ ऐसी चेतावनियाँ होती हैं ताकि संसार में धर्म बना रहे। हो सकता है कि भगवान किसी असुर को वरदान दे दें परन्तु यदि वह असुर अपने पाप, अपने लोभ, अपने घमण्ड पर अंकुश नहीं लगाता तो उसका अन्त निश्चित है।

बात तो यह है कि भगवान की करुणा और उस करुणा का अनुभव करने की हमारी क्षमता का स्तर वह होता है जो सही और ग़लत के परे है। यही नहीं, शास्त्र हमें यही बताते हैं कि भगवान का नाम अपने आप में शुद्धिकारक है। उनका नाम जपना अपने आप में ही एक पुण्यकर्म है, ऐसा कर्म जो मांगल्य का निर्माण करता है व उसे बढ़ाता है। शिवपुराण में पूरे के पूरे अध्याय हैं जो भगवान शिव के नाम का

महिमागान करते हैं। इनमें से एक अध्याय की व्याख्या करते हुए, सूत ऋषि यह घोषणा भी करते हैं, "मनुष्य जितने पाप कर सकता है, उससे भी कहीं अधिक पापों को नष्ट करने की सामर्थ्य भगवान शिव के नाम में है।" वे वर्णन करते हैं कि भगवन्नाम पापों को काटने वाली 'कुल्हाड़ी' है, यह 'पापों की महा-अग्नि में झुलस रहे' मनुष्यों को सुख-शान्ति व शीतलता प्रदान करने वाला 'अमृत' है और यह 'मोक्ष'[१] का साधन है।

महाशिवरात्रि के सत्संग में गुरुमाई जी ने बस यह कहा कि भगवान को अपना नाम प्रिय है, कि जब हम उन्हें पुकारते हैं तो वे प्रसन्न होते हैं। मेरे लिए इस मधुर व उद्‌बोधक वाक्य ने मनन-चिन्तन हेतु अनेक द्वार खोल दिए हैं। कितने सारे विचार हैं जिन पर मनन किया जा सकता है। इससे जुड़े कितने सारे पहलू हैं जिनका और अधिक अन्वेषण किया जा सकता है।

इसलिए मैं सोच रही हूँ : यदि आपको इस सिखावनी पर मनन करने का अवसर मिला हो, तो आपके लिए क्या उभरकर आया है? भगवान शिव को अपना नाम प्रिय है, यह सुनकर आपके मन में क्या विचार आते हैं?

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] शिवपुराण : भाग १; श्री जे. एल. शास्त्री द्वारा सम्पादित [दिल्ली; मोतीलाल बनारसीदास, १९५०], अध्याय २३, पृ १५२।